समयसार, १३५ कलश है। निर्जरा अधिकार है। निर्जरा के तीन प्रकार हैं। एक तो कर्म का खिरना, वह तो स्वतन्त्र जड़ की पर्याय है। अशुद्धता का गलना, वह शुद्ध स्वभाव का अनुभव होने पर अशुद्धता टलती है, उसे भी निर्जरा कहा जाता है और शुद्धि की वृद्धि हो, आनन्द के अनुभव की वृद्धि हो, उसे भी निर्जरा कहते हैं। (इन) तीन को निर्जरा कहते हैं। मूल वस्तु तो आनन्द अतीन्द्रिय... सूक्ष्म बात है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का झुकाव करके अनुभव करे। परसन्मुख का झुकाव छोड़कर पर के अनुभव को जहर जाने और स्व के अनुभव के आनन्द के वैभव से तृप्त रहे, इसलिए वह शुद्धि बढ़े, उसे यहाँ निर्जरा कहते हैं। १३५ कलश।

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञान-वैभव-विरागता-बलात्-सेवकोऽपि तदसावसेवकः ।।१३५।।

क्योंकि [ना] यह (ज्ञानी)... निर्जरा अधिकार है न! इसलिए ज्ञानी अर्थात् आत्मा के अनुभव में समर्थ है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर सागर है। उसके अनुभव में, लीनता में, उसके वेदन में तत्पर है, उसे यहाँ ज्ञानी कहते हैं। **(ज्ञानी) पुरुष... [विषयसेवने अपि] विषय सेवन करता हुआ...** यह भाषा लौकिक की अपेक्षा से कही है। बाकी ज्ञानी को विषय का सेवन ही नहीं है परन्तु लोग देखते हैं, इस अपेक्षा से कहा है। धर्मी को तो आनन्द का वैभव प्रगट हुआ है। आहाहा! है? देखो!

विषय सेवन करता हुआ भी ज्ञानवैभव... जिसे आत्मा के आनन्द का वैभव प्रगट हुआ है। आहाहा! यह पैसा और इज्जत और कीर्ति को वैभव नहीं कहा। पुण्य के परिणाम को भी वैभव नहीं (कहा)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा का अनुभव, वह उसका वैभव है। आहाहा! धर्मी जीव बाह्य में विषय में सामग्रियाँ; जैसे रोगी रोग का उपचार करे, वैसे धर्मी को भी राग आता है, तब उसका उपचार दिखता है, इस अपेक्षा से सेवन कहते हैं। बाकी तो आत्मा के आनन्द के वैभव के समक्ष किसी भी राग के रस में-कण में कहीं प्रेम और रस नहीं है। अपने में अतीन्द्रिय आनन्द देखा है, इसलिए वह राग से लेकर पूरी दुनिया (में से) बुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! ऐसा धर्म का स्वरूप है, ऐसी शर्त है।

[विषयसेवने अपि] ऐसा दिखता अवश्य है न! आहाहा! अन्दर में बाहर का रस नहीं, उसे ज्ञान का वैभव, आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका वैभव पर्याय में फैला हुआ है। आहाहा! जो स्वभाव में सामर्थ्यरूप वैभव था, वह धर्मी की पर्याय में वह अनन्त जो स्वभाव-वैभव था, वह फैला हुआ है। आहाहा! जिसकी एक-एक पर्याय में अनन्त ताकत, ऐसी अनन्त पर्याय का वैभव प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसी बात! ज्ञानवैभव अर्थात् कि आत्मा का अनुभव। आनन्द के अनुभव को यहाँ वैभव कहा है। आहाहा! बाहर की किसी सामग्री को वैभव में नहीं लिया। दो-पाँच करोड़ रुपये का बँगला हो... आहाहा! लड़के का विवाह हो, अरबपति व्यक्ति हो, दस-पन्द्रह-बीस लाख खर्च करना हो और ऐसे सब गहने, कपड़े और धूमधाम दिखती हो, वह कोई वैभव नहीं है। आहाहा! वह तो श्मशान की हड्डियों की चमकार जैसा लगे, वैसी हड्डियों की चमक है। आहाहा!

आत्मवैभव, यहाँ ज्ञानवैभव लिया है। ज्ञान अर्थात् ही आत्मा। उसका वैभव अर्थात् अनुभव। आहाहा! पूरी दुनिया से अन्तर है, प्रभु! दुनिया को जरा सा शरीर ठीक हो, पैसा ठीक हो, इज्जत (ठीक हो), शरीर निरोग हो, वहाँ उसके रस के कारण कुछ सूझ नहीं पड़ती। आहाहा! उसके रस के कारण कहीं आत्मा अन्दर भगवान है, पूर्णानन्द का सागर है, उसकी उसे अन्दर सूझ नहीं पड़ती और सूझ पड़ी, उसे पर में सूझ नहीं पड़ती। आहाहा! यह कहते हैं। धर्मी जीव विषयसेवन में दिखाई देने पर भी, दिखता है... वह परद्रव्य को भोग नहीं सकता, वह तो तीन काल, तीन लोक में है। मात्र अन्दर राग आता है, उसमें उसे सेवन करता है अर्थात् कि वेदन है, तथापि उसमें रंजन परिणाम नहीं है। उसे राग में रंगा हुआ परिणाम नहीं है। आहाहा! आत्मा के आनन्द के वैभव के अनुभव के रंग से रंगा हुआ, उसे दूसरी किसी चीज़ में रस नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसी समकित में शुरुआत है अथवा शर्त है। यह वस्तु की स्थिति है, भाई! आहाहा! वह विषय संयोग दिखता है, कहते हैं, पूर्व का कोई पुण्यकर्म का उदय हो और संयोग अनुकूल बहुत दिखाई दे और उनकी ओर का जरा झुकाव भी दिखाई दे परन्तु अन्तर के आनन्द के झुकाव के समक्ष उस झुकाव की तुच्छता, जहरता दिखाई देती है। इसलिए वह सेवन करता है, ऐसा कहा जाता है, तथापि वह सेवन नहीं करता। आहाहा! ऐसी मूल रकम है। अब मूल रकम को छोड़कर सब ऊपर की बातें (करे), व्रत, तप, अपवास और यह रस का त्याग और अमुक... आहाहा! वह कोई कीमती चीज़ नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो शास्त्र का पठन हुआ और लोगों को समझाना आवे, उसकी भी कुछ कीमत यहाँ नहीं है। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसका स्वाद आया। करने का तो यह है। उसका वैभव। शब्द-भाषा कैसी प्रयोग की है! **ज्ञानवैभव...** आत्मा का वैभव। आहाहा! रागादि है, वह आत्मा का वैभव नहीं है। दया, दान का विकल्प उठे, वह भी आत्मवैभव नहीं है। आहाहा! आत्मवैभव, उसकी जाति में भात पाड़े। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसकी पर्याय में उसका अनुभव करे, उस वस्तु के स्वभाव को अनुसरकर पर्याय में अनुभव हो, वह आत्मा का वैभव, वह ज्ञान का वैभव कहने में आता है। उस ज्ञान के वैभव के समक्ष विषयसेवन की कोई कीमत नहीं है। आहाहा! उसे कीमत नहीं, हों! आहाहा! दुनिया को विषयसेवन में कीमत लगती है। क्योंकि भगवान का

पहलू देखा नहीं है। भगवान के पक्ष में चढ़ा नहीं है। आहाहा! राग-द्वेष और विकल्प और मात्र उसे ही पूँजी मानकर, उसके पक्ष में ही चढ़ा हुआ है। आहाहा! उसके-राग के रसिक को... वहाँ नहीं आता समयसार में? 'सर्व आगम धरो अपि' आहाहा! सर्व आगम जाने परन्तु यदि राग के कण के भी प्रेम में-रस में पड़ा हो तो वह कुछ नहीं जानता। आहाहा!

यहाँ तो लक्ष्य में अभी तो 'वैभव' शब्द आया है न! आत्मवैभव। यह 'ज्ञान' शब्द से (आशय) आत्मवैभव। आत्मवैभव शब्द से (आशय) आत्मअनुभव। आत्मा के आनन्द का अनुभव वह आत्मा का वैभव है। आहाहा! उस आत्मा के अनुभव के वैभव के बल से विषयसेवन दिखने पर भी उसकी ओर का रस नहीं है, इसलिए वह सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता। आहाहा! ऐसी मुद्दे की बात है। मुद्दे की पहली बात छोड़कर ऊपर की सब बातें (करे)। आहाहा! दूसरी कथानुयोग, त्याग। धर्म कथानुयोग में से त्याग निकाले और... आहाहा! उसकी क्या कीमत है?

धर्मी जीव को आत्मा के वैभव के समक्ष विषयसेवन, वह सेवन ही नहीं है। आहाहा! और वैराग्यता का बल। दो शब्द प्रयोग किये न? आत्मवैभव और वैराग्य का बल। पुण्य और पाप के परिणाम से विरक्तपना, उसका बल जमा है। आहाहा! अकेला आत्मा का अस्तिपना अनुभव में आया, ऐसा नहीं, परन्तु इस ओर से भी वैराग्य को प्राप्त हुआ है। इस ओर से अस्ति का अनुभव है, तब इस ओर से पुण्य के परिणाम के प्रति भी जिसे वैराग्य है। आहाहा! पुण्य की सामग्री है, उसे छोड़ता है, इसलिए वैरागी है—ऐसा नहीं है। पर के साथ क्या सम्बन्ध है? प्रभु! राग की रक्तता छोड़ता है, चाहे तो शुभभाव हो, उसका जो रक्तपना छोड़ता है, वह विरक्त है। वह विरक्त है, वह वैरागी है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानवैभव और विरागता के बल से... आहाहा! दो बातें हुई। दो गाथाओं में आया था न? पहले में ज्ञान, दूसरी में वैराग्य की बात थी। वह इसकी ली है और अब बाद में आयेगी, उसका भी इसमें आयेगा। आहाहा! भगवान आत्मा अन्तर में चमत्कारिक शक्तियों से भरपूर भगवान है। चैतन्य-चमत्कार, जिसके समक्ष दुनिया का चमत्कार बड़ा शून्य है। आहाहा!

छोटी उम्र में एक बार उमराला में देखा था। बड़ा दरवाजा है, उस दरवाजे पर एक

व्यक्ति बैठे और फिर दो बाँस उसके पैरों में बाँधे। इसलिए ऊँचा बैठे और उन बाँस से फिर बाजार में चले। नजरों से देखा है। उमराला में दरवाजा है न? दरवाजा ऊपर होता है न? वहाँ बैठे और फिर पैरों में दो बड़े बाँस बाँधे, फिर उस बाँस से बाजार में चले।

मुमुक्षु : दो के बीच में डोरी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : डोरी कुछ नहीं। वह तो खुल्ले-खुल्ला दो बाँस। यह तो देखी हुई बात है। बाजार में, हों! बड़ा बाजार है 'रोकड़ सेठ' की दुकान थी। बाजार ऐसे चारों ओर भरता है। अकेले दो बाँस पैर में बाँधे, उस पैर से चले, उस बाँस से चले। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि यह तो ओहोहो! उसमें धूल में भी कुछ नहीं। वह तो उस प्रकार का अभ्यास करने से (आ जाता है)। आहाहा!

यहाँ तो ज्ञान का अनुभव और वैराग्य का बल, इन दो से चलता है। आहाहा! बाँस से नहीं। उमराला में यह सब लोग तो आवे न! बहुतों को रुच जाए। आहाहा! लोग ऐसे ओहो! ओहो! ऐसा करे। बाँस से ऐसे डग भरे। अरे भाई! तुझमें आत्मा का चमत्कार, वैभव जो अनुभव और राग से विरक्त ऐसा जो वैराग्य बल, इन दो पैर से चलता है, वह आत्मा चमत्कारी है। आहाहा! है? आचार्य, अमृतचन्द्राचार्य ज्ञानवैभव और वैराग्यबल ऐसे दोनों लिये हैं। वह अनुभव और यह वैराग्य का बल है। राग से उदास... उदस... उदास... राग का कण हो परन्तु उससे उदास है। उसका आसन उदास है। स्व में आसन है। उस राग से आसन हट गया है। आहाहा! राग दिखता है और राग की छोड़ने की सामग्री में भी मानो एकत्रित करता हो और छोड़े (ऐसा) दिखता है। अन्दर में कुछ नहीं है। आहाहा! इसमें जोर है।

ज्ञान का अनुभव। आत्मा का वैभव अर्थात् यह वैभव। अनुभव, वह वैभव है। 'अनुभवरत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्ष स्वरूप।' ऐसी बातें हैं। आहाहा! ऐसे अनुभव के वैभव से और वैराग्य के बल से [**विषयसेवनस्य स्वं फलं**] विषय सेवन का जो राग में रंग चढ़ जाना। राग में रंग चढ़ जाना, वह रंग चढ़ा नहीं। वह रंग उतर गया। आहाहा! राग का रंजनपना, राग में रंजनपना, वह उतर गया। आहाहा! और भगवान आत्मा में रंजनपना चढ़ गया। आत्मा के आनन्द के अनुभव के रंजन में चढ़ गया। आहाहा! विषयसेवन का फल अर्थात् रंजित परिणाम, ऐसा। रंगा हुआ, राग में रंगा हुआ, फल। वह रंगता ही नहीं। आत्मा का रंग लगा, उसे इस राग का रंग किसका

हो ? आहाहा ! जिसे प्रभु का रंग लगा... आहाहा ! उसे भिखारी के साथ रंग कैसे लगे ? आहाहा ! ऐसी वस्तु है। लोगों को कठिन पड़ती है। वस्तुस्थिति यह है। आहाहा !

विषयसेवन के निजफल को... अर्थात् कि उसमें राग में रंगे हुए रस को, वह रस उसे छूट गया है। आहाहा ! वस्तु के स्वभाव के रंग में रंगा, उसे अब राग का रंग नहीं चढ़ता। आहाहा ! भले वह गृहस्थाश्रम में दिखे। छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द के मध्य में दिखाई दे परन्तु राग का रस उड़ गया, वह उड़ गया है। आहाहा ! रंजित परिणाम कहा न ? रंजित परिणाम अर्थात् यह। राग में एकत्वबुद्धि अथवा राग का रंग। आहाहा ! अथवा राग का रस। आहाहा ! उसे वह प्राप्त नहीं होता।

[न अश्नुते] नहीं भोगता... उसका अर्थ यह **प्राप्त नहीं होता,...** राग के रंजन परिणाम को प्राप्त नहीं होता। जिसे राग का रंग उड़ गया है, जिसे स्वभाव का रंग चढ़ा है। आहाहा ! धर्म ऐसी चीज़ है, बापू ! आहाहा ! जिसके फल भव के अनन्त-अनन्त अनन्त का अन्त, अनन्त भव का अन्त (है)। आहाहा ! और सादि-अनन्त अनन्त... अनन्त... अनन्त... काल का आनन्द और शान्ति का उपाय, वह उपाय तो अलौकिक होगा या नहीं ? आहाहा ! उसे भोगता नहीं अर्थात् इसका अर्थ **[विषयसेवनस्य स्वं फलं]** अर्थात् रंजित परिणाम को प्राप्त नहीं होता, ऐसा इसका अर्थ लेना। राग में रंगी हुई दशा नहीं होती। आहाहा ! वैराग्यबल और ज्ञान के अनुभव के समक्ष, राग के रंजन परिणाम, रंगे हुए परिणाम उसे नहीं होते। आहाहा !

इसलिए [असौ] यह (पुरुष) [सेवकः अपि असेवकः] सेवक होने पर भी असेवक है... विषयों को सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता। कोई स्वच्छन्दी ऐसा कहे कि हम तो ज्ञानी हैं, (हम) विषय भोगते हैं तो हमको रस नहीं है, यह बात यहाँ नहीं है। आहा ! बहुत (वर्ष पहले की) एक बात थी। एक बाबा था। बहुत वर्ष (पहले की) बात है। लगभग (संवत्) १९७३ या १९७६ (की बात है)। एक बाबा था, (उसने) एक महिला रखी हुई थी। रखी, फिर उसके प्रति प्रेम बहुत और फिर उस महिला ने उसे—बाबा को छोड़ दिया। छोड़ दिया और इसे कषाय चढ़ गयी; इसलिए कोट के ऊपर कुछ लिखा था। क्या लिखा था.. ?

मुमुक्षु : महिला का नाम 'लक्ष्मी' था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, महिला का नाम लक्ष्मी था। 'लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी...' यह नजर से देखा हुआ है, हों! दामनगर के उपाश्रय में बैठे हुए थे, (वहाँ) बाबा निकला। कोट के ऊपर लक्ष्मी लिखा (था)। कहा, यह क्या? फिर मैंने ऐसा कहा। इसलिए फिर किसी ने उससे पूछा कि यह क्या हुआ? तुम बाबाजी और यह? (तो कहा), रंग चढ़ा, वह अब उतरता नहीं, ऐसा वह बोला था। 'क्षत्रिय का रंग चढ़ा, सो चढ़ा, रंग उतरता नहीं।' क्षत्रिय होगा। आहाहा! एक स्त्री ने छोड़ दिया, इसलिए फिर उसकी बेइज्जती करने के लिये कोट में लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी... (लिख डाला)। आहाहा! उसे पूछा, तब ऐसा बोला, 'क्षत्रिय का रंग चढ़ा, वह उतरता नहीं।' अरर्र! और गाँव में घूमे 'लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी...' करता हुआ फजीहत करने के लिये।

यह कहते हैं कि जहाँ अनन्त रस आत्मा में चढ़ा... आहाहा! (वहाँ) दुनिया के सब रस उड़ गये। यह रंग चढ़ा, वह उतरता नहीं, कहते हैं। वह उल्टा (रस) न? आहाहा! (संवत्) १९७६ की बात होगी। दामनगर में चातुर्मास था।

भावार्थ :- (अनुभव) **ज्ञान और विरागता की ऐसी कोई अचिंत्य सामर्थ्य है...** ज्ञान अर्थात् अकेला जानपना, ऐसा नहीं। शास्त्र का ज्ञान / उघाड़, वह ज्ञान नहीं। ज्ञान अर्थात् कि आत्मा का अनुभव, उसका नाम यहाँ ज्ञान है। आहाहा! **ज्ञान और विरागता की ऐसी कोई अचिंत्य सामर्थ्य है...** अचिन्त्य सामर्थ्य! जो कोई कल्पना में साधारण प्राणी को ख्याल में न आवे। आहाहा! **कि ज्ञानी इन्द्रियों के विषयों का सेवन करता हुआ भी उनका सेवन करनेवाला नहीं कहा जा सकता,...** आहाहा! ऐसा कोई आत्मा का रस चढ़ गया है और राग का रस उतर गया है। आहाहा! तथापि विषय के सेवन में दिखने पर भी वह सेवक है ही नहीं। आहाहा!

क्योंकि विषय-सेवन का फल जो रंजित परिणाम है... रंजित अर्थात् रंगे हुए, राग में रंगे हुए। **उसे ज्ञानी नहीं भोगता...** राग में रंगकर विषय को नहीं भोगता। आहाहा! कठिन बात है। अर्थात्? भोगता नहीं अर्थात्? यह उसमें आया था न? [**न अश्नुते**] भोगता नहीं अर्थात् प्राप्त नहीं होता। अर्थ में आया था। इसी प्रकार यहाँ भोगता नहीं, अर्थात् राग के रंग को प्राप्त नहीं करता, ऐसा। राग को भोगता नहीं अर्थात् राग में रंगता नहीं। चैतन्य में रस चढ़ गया है। वह रस, राग का रस अब होता नहीं। राग में रस को प्राप्त नहीं करता। भोगता नहीं अर्थात् यह (आशय है)।

गाथा-१९७

अथैतदेव दर्शयति -

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि।।१९७।।

सेवमानोऽपि न सेवते असेवमानोऽपि सेवकः कश्चित्।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि न च प्राकरण इति स भवति।।१९७।।

यथा कश्चित् प्रकरणे व्याप्रियमाणोऽपि प्रकरणस्वामित्वाभावात् न प्राकरणिकः, अपरस्तु तत्राव्याप्रियमाणोऽपि तत्स्वामित्वात्प्राकरणिकः तथा सम्यग्दृष्टिः पूर्वसञ्चित-कर्मोदयसम्पन्नान विषयान् सेवमानोऽपि रागादिभावानामभावेन विषयसेवनफल-स्वामित्वाभावादसेवक एव, मिथ्यादृष्टिस्तु विषयानसेव-मानोऽपि रागादिभावानां सद्भावेन विषयसेवनफलस्वामित्वात्सेवक एव।।१९७।।

अब इसी बात को प्रगट दृष्टान्त द्वारा बतलाते हैं:-

सेता हुआ नहिं सेवता, नहिं सेवता सेवक बने।
प्रकरणतनी चेष्टा करे, अरु प्राकरण ज्यों नहिं हुवे।।१९७।।

गाथार्थ : [कश्चित्] कोई तो [सेवमानः अपि] विषयों को सेवन करता हुआ भी [न सेवते] सेवन नहीं करता, और [असेवमानः अपि] कोई सेवन न करता हुआ भी [सेवकः] सेवन करनेवाला है-[कस्य अपि] जैसे किसी पुरुष के [प्रकरण-चेष्टा] [१]प्रकरण की चेष्टा (कोई कार्य सम्बन्धी क्रिया) वर्तती है [न च सः प्राकरणः इति भवति] तथापि वह [२]प्राकरणिक नहीं होता।

टीका : जैसे कोई पुरुष किसी प्रकरण की क्रिया में प्रवर्तमान होने पर भी, प्रकरण का स्वामित्व न होने से प्राकरणिक नहीं है और दूसरा पुरुष प्रकरण की क्रिया में प्रवृत्त न होता हुआ भी, प्रकरण का स्वामित्व होने से प्राकरणिक है; इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि पूर्वसंचित कर्मोदय से प्राप्त हुए विषयों का सेवन करता हुआ भी रागादिभावों

---

१. प्रकरण=कार्य। २. प्राकरणिक=कार्य करनेवाला।

के अभाव के कारण विषयसेवन के फल का स्वामित्व न होने से असेवक ही है (सेवन करनेवाला नहीं है) और मिथ्यादृष्टि विषयों का सेवन न करता हुआ भी, रागादिभावों के सद्भाव के कारण विषयसेवन के फल का स्वामित्व होने से सेवन करनेवाला ही है।

भावार्थ : जैसे किसी सेठ ने अपनी दुकान पर किसी को नौकर रखा। और वह नौकर ही दुकान का सारा व्यापार–खरीदना, बेचना इत्यादि सारा कामकाज करता है, तथापि वह सेठ नहीं है क्योंकि वह उस व्यापार का और उस व्यापार के हानि–लाभ का स्वामी नहीं है; वह तो मात्र नौकर है, सेठ के द्वारा कराये गये सब कामकाज को करता है। और जो सेठ है, वह व्यापार सम्बन्धी कोई कामकाज नहीं करता, घर पर ही बैठा रहता है, तथापि उस व्यापार तथा उसके हानि–लाभ का स्वामी होने से वही व्यापारी (सेठ) है। यह दृष्टान्त सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि पर घटित कर लेना चाहिए। जैसे नौकर व्यापार करनेवाला नहीं है; इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि विषयों का सेवन करनेवाला नहीं है और जैसे सेठ व्यापार करनेवाला है; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि विषय सेवन करनेवाला है।

गाथा - १९७ पर प्रवचन

अब इसी बात को प्रगट दृष्टान्त द्वारा बतलाते हैं:– १९७ (गाथा)

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि।।१९७।।

सेता हुआ नहिं सेवता, नहिं सेवता सेवक बने।
प्रकरणतनी चेष्टा करे, अरु प्राकरण ज्यों नहिं हुवे।।१९७।।

आचार्य ने दृष्टान्त दिया, कहो! टीका - **जैसे कोई पुरुष किसी प्रकरण की क्रिया में प्रवर्तमान होने पर भी...** आहाहा! यह विवाह के प्रसंग में या ऐसा होवे न? तब कामकाज में प्रवर्तता हो, स्वामीरूप से न हो, स्वामी तो दूसरा हो और उसने काम सौंपा हो तो काम कर दे। **प्रकरण की क्रिया में प्रवर्तमान होने पर भी प्रकरण का स्वामित्व न होने से...** आहाहा! वह क्रिया आदि हो। आहाहा!

विवाह में एक दृष्टान्त बना था। एक व्यक्ति ने अपने दामाद को सब काम सौंपा तो ऐसा बनाया कि, दूधपाक और ऐसा बनाया। और लोग अधिक आवे (और) कुछ मेल

नहीं। इसलिए घर के मालिक को ऐसा लगा कि यह मेरी इज्जत नहीं (रहेगी)। वह क्या कहलाता है ? अन्तिम दिन करते हैं न ? प्रीतिभोज... प्रीतिभोज। प्रीतिभोज किया हुआ था और उसमें बनाया दूधपाक। तो कितने लोग आयेंगे, उसका मेल नहीं। दूधपाक कम पड़े तो करना क्या ? दूधपाक कहीं तुरन्त होता है ? दूसरी चीज़ होवे, तब तो हलवाई की दुकान से बर्फी, लड्डू (लाये जा सकें)। उसे ऐसा बुरा लगा, उसके मालिक को, इसके कारण उसे खराब लगा तो वह विवाह के प्रसंग में जहर पीकर मर गया। काम उसे सौंपा हुआ था और काम में इस प्रकार हुआ और उसमें बाहर में बात आयी, एकदम आयी कि यह लोग अधिक आ जाएँ, दूधपाक तो मर्यादा प्रमाण हो, कम पड़े तो लाना कहाँ से ? बर्फी या चूरमा या ऐसा बनाया होता तो तुरन्त कुछ तैयार भी करे। चूरमा न हो तो बर्फी या हलुवा बनावे। हैं ? पहुँच जाए। आहाहा ! आहाहा !

उस भर्तृहरि में नहीं आता ? भर्तृहरि को जब 'पिंगला' की खबर पड़ी। अरेरे ! मैंने पिंगला को कैसा माना ? यह पिंगला ऐसी निकली ? ९२ लाख मालवा का अधिपति राजा भर्तृहरि ! अरे ! यह मेरी स्त्री, मैंने इसे प्रेम (किया)। आहा ! वैश्या के पास एक अमरफल आया। वैश्या दे गयी दरबार को, भर्तृहरि को और भर्तृहरि ने सौंपा रानी को; रानी ने अश्वपाल को दिया। उसने अश्वपाल रखा हुआ था। ९२ लाख मालवा का अधिपति, उसे छोड़कर वह अश्वपाल के साथ चलती थी। कहो, आहाहा ! उसने दिया और उसने (अश्वपाल ने) वापस दिया वैश्या को और वैश्या वापस भर्तृहरि के पास लायी। आहाहा ! दुनिया के ठग इस प्रकार ठगते हैं ! बाहर में मानो... आहाहा ! तुम्हारी हूँ... तुम्हारी हूँ... तुम्हारी हूँ... अन्दर में... आहाहा ! हो गया, बाबा हो गया।

गुरु ने हुकम किया, जाओ ! वहाँ से अनाज लेकर आओ। तुम्हारी पहली भिक्षा लेकर आओ। रानी से भिक्षा लेकर आओ। आहाहा ! गुरु ने कहा, उस समय के गुरु भी कैसे होंगे ! ऐसा बड़ा राजा भिक्षा ले ! आहाहा ! रानी के पास लेने गया। रानी तो शोक में थी। कुछ बना नहीं था। माता ! ऐसा बोला, माता ! मुझे भिक्षा दे। रानी कहती है, 'प्रभु ! राजन् ! माता न कहो।' माता हो, मेरे अब माता हो, दूसरा कुछ है नहीं। आहाहा ! मेरे पास कुछ नहीं, प्रभु ! यह नाटक देखे हैं, उसमें सब आता था। 'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में जीमते जाओ योगीराज।' एक क्षण में खीर बनाऊँ।... 'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में' उसका वैराग्य कैसा

होगा, कहो! दृष्टि भले वस्तु की (नहीं) परन्तु बाहर के वैराग्य के भास जैसा।

वैराग्य तो तब कहलाता है कि सम्यग्दर्शनसहित राग का रस नहीं, उसे वैराग्य कहा जाता है। यह कहीं वैराग्य नहीं परन्तु इतना तो भी वह वैराग्य नहीं, हों! वह तो मन्द कषाय की स्थिति है। माता! कहकर खड़ा रहा। बड़ा दरबार ९२ लाख मालवा का अधिपति! नाटक देखे हैं बड़े-बड़े। 'प्रभु! मुझे माता न कहो, राजन्! मैं एक (क्षण में) खीर बनाऊँ, थोड़े खड़े रहो।' (तब राजन कहते हैं), 'मेरी जमात चली जा रही है, मैं खड़ा नहीं रहूँ।' चले गये। तथापि वह वास्तविक वैराग्य नहीं है। यह वैराग्य जो कहते हैं, वह नहीं। आहाहा! बाहर से तुच्छता लगी। 'देखा नहीं कुछ सार जगत में, देखा नहीं कुछ सार।' ऐसा बोला। सब छोड़ा, वह वैराग्य नहीं।

वैराग्य तो भगवान आत्मा का अनुभव होने पर राग की रक्तता छूट जाए, पुण्य के प्रेम के रंग, रस छूट जाए। आहाहा! उसे ज्ञान और वैराग्य कहा जाता है। लोग ऐसी महिमा करे कि ऐसा राजा था। यह भर्तृहरि में आता है न? बनाया हुआ आता है। सब पढ़ा है। वह वैराग्य नहीं, बापू! आहाहा! भगवान का वैराग्य अलग प्रकार का है। हैं? वह तो छोड़कर गया है तो भी वैराग्य नहीं और यहाँ तो संसार में पड़ा हो तो भी वैराग्य है। अरे रे! उसका माप कहाँ से लाना? समझ में आया? वह राज छोड़कर चला गया तो भी वह वैराग्य नहीं कहलाता।

यहाँ कहते हैं कि स्त्री आदि के सेवन में दिखायी दे, राजपाट में दिखायी दे, तथापि वैरागी है। आहाहा! ऐई! जिसके राग के रंजन परिणाम, रस टूट गया है और जिसे आत्मा के आनन्द के रस का प्याला फटा है। आहाहा! उस अनुभव के रस के प्याले के समक्ष कहीं रस नहीं पड़ता। आहाहा! वह राग से, पुण्य के परिणाम से भी विरक्त है, रक्त नहीं, उसे यहाँ वैराग्य कहा जाता है। वह वैरागी जीव संसार में ऐसे विषय सेवन करता दिखायी दे, तथापि वह सेवन नहीं करता और यह छोड़ता है, तथापि उसने कुछ छोड़ा नहीं है। आहाहा! ९२ लाख मालवा के अधिपति ने राज छोड़ा (परन्तु) छोड़ा नहीं। आहाहा! उसे आत्मा अन्दर क्या चीज़ है? सर्वज्ञ कहते हैं वह, हों! अज्ञानी कहे, वह आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके रस में चढ़ा है, उसे राग का रस उतर गया है। राग आता है, राग में जुड़ता है परन्तु अन्दर के रस में उतर गया है। आहाहा! समझ में आया?

तीन लोक के नाथ वीतराग जैन परमेश्वर की बात कोई अलग है। दुनिया से पूरा अलग प्रकार है। अब वह ९२ लाख (मालवा) छोड़कर बैठा, तो भी वैराग्य नहीं। हैं? और यहाँ छियानवें हजार स्त्रियों में पड़ा हो तो कहे, वैरागी। यह तुलना करना किस प्रकार? आहाहा! राग का रंजनपना, रसपना छूट गया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, १९७ आयी न? **जैसे कोई पुरुष किसी प्रकरण...** प्रकरण अर्थात् कोई क्रिया। विवाह की क्रिया, भोज की क्रिया, बड़ा भोज हो अथवा क्या कहलाता है, यह कहा विवाह का अन्तिम...? प्रीतिभोज या बड़ा व्यापार हो। उस **प्रकरण की क्रिया में प्रवर्तमान होने पर भी प्रकरण का स्वामित्व न होने से...** आहाहा! उसका वह स्वामी नहीं है। नौकर करोड़ों का व्यापार करता हो, परन्तु उसके फलरूप से उसे कुछ है नहीं। उसका स्वामी तो वह (सेठ) है। आहाहा! उसे तो खबर है कि मुझे यह दो हजार, पाँच हजार रुपये महीने में देता है, बस! और करोड़ों की आमदनी होती है, वह कहीं मुझे नहीं है और कदाचित् करोड़ों का नुकसान हुआ हो तो भी मुझे कुछ नहीं है। आहाहा! वह किसी भी काम की क्रिया में प्रवर्तता होने पर भी उस काम का स्वामीपना नहीं होने से। प्रकरण अर्थात् वह क्रियाएँ।

प्राकरणिक नहीं है... आहाहा! वह तो मालिक ने दामाद को सौंपा हुआ तो उसमें ऐसा हुआ (तो) वह दामाद जहर पीकर मर गया, लो! विवाह के प्रसंग में। क्योंकि मालिक (पने का) रंग चढ़ गया। मैं करूँ... मैं करूँ.... मैं करूँ... मैंने दस मण, पन्द्रह मण दूधपाक बनाया। भले अभी इतने लोग जीमें। परन्तु भाई! मेल नहीं खाता। यह बड़ा घर है, लोग कितने आते हैं, यह दूधपाक (नहीं होगा)। तुम बहुत हठ में चढ़ते हो कि दूधपाक ही बनाओ। ऐसा नहीं चलता। वह इसमें मर गया। कान्तिभाई! यह तुम्हारे संसार के सब लक्षण। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्मी, जैसे कोई प्रकरण अर्थात् क्रियाकाण्ड के प्रकार में चढ़ गया हो, तथापि उसका वह स्वामी नहीं तो उसका हर्ष-शोक उसे नहीं है, उसे हानि और लाभ उसके घर में नहीं है। हानि और लाभ सेठ के घर में है। राणपुर में तो एक नौकर ऐसा था। सेठिया था। राणपुर। सेठ दुकान में आवे तो कुछ बोले, चले जाओ यहाँ से। तुम्हारा काम नहीं। नौकर ने ऐसी छाप पाड़ दी थी कि सेठ चला जाए। तुम्हारा काम नहीं। डांवाडोल

करो नहीं, अमुक-अमुक और ऐसा, वैसा, चले जाओ यहाँ से। कर्ता-हर्ता, तथापि फल का भोगता कहीं स्वयं है। लाभ या हानि, वह तो उसकी है। हैं ? आहाहा! स्वामीपना नहीं होने से उस क्रिया का वह अधिकारी नहीं है, उसका स्वामी नहीं है।

दूसरा पुरुष प्रकरण की क्रिया में प्रवृत्त न... आहाहा! उसका मालिक हो, वह एक ओर घर में बैठा हो। दुकान का काम चलता हो, उसे नौकर चलाता हो, इसके सिर पर कुछ न हो, तथापि स्वामीपना इसे वर्तता है। आहाहा! है न ? **प्रकरण की क्रिया में प्रवृत्त न होता हुआ भी प्रकरण का स्वामित्व होने से...** दुकान के करोड़ों के धन्धे का स्वामी तो वह है। नुकसान हो या लाभ हो, वह कहीं नौकर को है ? नौकर को तो जो वेतन, दो हजार, या बाईस सौ हो, वह दे देवे। आहाहा! यह दृष्टान्त तो कुन्दकुन्दाचार्य ने दिया है।

क्रिया में प्रवृत्त न होता हुआ भी प्रकरण का स्वामित्व होने से प्राकरणिक है,.. स्वामी है। **इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि पूर्वसंचित कर्मोदय से प्राप्त हुए विषयों का...** आहाहा! धर्मी जीव को, अनुभवी को... आहाहा! यह एक बार कहा नहीं था ? छोटी उम्र में, नौ-दस वर्ष की उम्र (थी), हमारे साथ रहते थे। हमारी माँ के गाँव के ब्राह्मण, इसलिए हम मामा कहते थे। वे नहावे और जब लंगोटी पहने, तब ऐसा बोलते 'अनुभवीने ऐटलुं रे आनन्दमां रहेवुं रे, भजवा परिब्रह्म ने बीजुं कांई न कहेवुं।' उस समय सुनते थे। मैंने कहा, क्या कहते हैं यह ? उन्हें भी खबर नहीं। 'अनुभवीने ऐटलुं रे आनन्दमां रहेवुं रे,...' आहाहा! यहाँ कहते हैं। वह क्रियाएँ भले सब होती हो, परन्तु स्वयं मालिक नहीं है। आहाहा! अनुभवी के आनन्द में उस क्रिया का स्वामी नहीं है। आहाहा!

सम्यक्दृष्टि पूर्वसंचित कर्मोदय से प्राप्त हुए विषयों का सेवन करता हुआ भी... भाषा व्यवहार की रखी है। **रागादिभावों के अभाव के कारण...** वह रंजित परिणाम कहा था न ? रंग उड़ गया है। आहाहा! जैसे कपड़े में रंग चढ़ावे परन्तु जैसे उड़ जाए, अन्दर फिटकरी लगायी न हो तो रंग उड़ जाए, वैसे यह रंग धर्मी को उड़ गया है। आहाहा! भगवान के पक्ष में चढ़ा (उसके) दूसरे सब पक्ष अब खराब हो गये। आहाहा! आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन की महिमा! देखो, अनुभव की महिमा! अब उसके समक्ष सब क्रियाकाण्ड की बातें पूरे दिन उसमें रच-पचकर मर जाए। पूरी मूल बात है वह तो रह जाए। आहाहा!

सम्यक्दृष्टि पूर्वसंचित कर्मोदय से प्राप्त... हुई सामग्री, उसे सेवन करता हुआ दिखायी दे, तो **भी रागादिभावों के अभाव के कारण विषयसेवन के फल का स्वामित्व न होने से...** आहाहा! जहाँ आनन्द का नाथ, अनन्त गुण का स्वामी, उसका स्वामी हुआ... आहाहा! अब उसे बाहर का स्वामीपना, भिखारीपना उसे किसका रहे? आहाहा! स्वरूप के आनन्द की लक्ष्मी के समक्ष बाहर के किसी वैभव में उसे महत्ता नहीं लगती। अज्ञानी को बाहर के अनेक प्रकार के वैभव के विशेष दिखने पर आत्मा का विशेषपना भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

वह **विषयसेवन के फल का स्वामित्व न होने से...** अर्थात् राग का रस ही जहाँ उड़ गया है, ऐसा इसका अर्थ है। वह **असेवक ही है...** सेवन करते हुए भी असेवक है। आहाहा! टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक बनाया न! बनाया (तब) उनकी माँ सब्जी में नमक नहीं डालती थी। यह मोक्षमार्गप्रकाशक (बनाने की) ऐसी धुन में (कि) उन्हें खबर नहीं की इसमें नमक नहीं है। रस चढ़ा हुआ मोक्षमार्गप्रकाशक का। आहाहा! वह काम जहाँ बन्द हो गया और माता ने वापस सब्जी दी (तो कहा), 'माँ! इसमें नमक नहीं है।' (तो माँ कहती है), 'भाई! नमक मैं छह महीने से नहीं डालती, तुझे आज खबर पड़ी?' मोक्षमार्गप्रकाशक का रस उड़ गया (शास्त्र का काम पूरा हुआ)। कहो, सब्जी में नमक की खबर नहीं रही। छह-छह महीने! रस चढ़ गया न मोक्षमार्गप्रकाशक का! कैसा बनाया है। मोक्षमार्गप्रकाशक! आहाहा!

श्रीमद् ने भी महिमा की है, सत्श्रुत में रखा है। बीस सत्श्रुत के नाम दिये हैं न, उसमें मोक्षमार्गप्रकाशक सत्श्रुत में डाला है। आहाहा! भले उनके लोग थे श्वेताम्बर को माने। परन्तु इसमें इनकार किया है। श्वेताम्बर हैं, वे गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! वे जैन ही नहीं हैं। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी जैन ही नहीं हैं। कठिन बात है, बापू! आहाहा! जिसने राग से भिन्न, गुरुपना भी ऐसा, धर्म भी ऐसा और केवली की तो बात ही क्या करना? आहाहा! ऐसी बात जिसे अन्तर में बैठी और अनुभव में आयी... आहाहा! उसे दूसरे किसी धर्म के प्रति रस उड़ जाता है। आहाहा! अन्दर कोई प्रेम नहीं रहता। आहाहा!

विषयसेवन के फल का स्वामित्व न होने से असेवक ही है (सेवन करनेवाला नहीं है) और मिथ्यादृष्टि विषयों का सेवन न करता हुआ भी... देखा! हजारों

रानियाँ छोड़कर बैठा हो परन्तु अन्दर में राग का प्रेम है। राग से भिन्न भगवान का अनुभव नहीं और राग का रस छूटा नहीं। भले बाबा, योगी, साधु हो, जैन का साधु हुआ हो, दिगम्बर साधु! आहाहा! तथापि **मिथ्यादृष्टि विषयों का सेवन न करता...** आजीवन बालब्रह्मचारी हो परन्तु अन्दर में राग का रस छूटा नहीं। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि विषयों का सेवन न करता हुआ भी रागादिभावों के सद्भाव के कारण... देखा? राग का छोटे में छोटा कण (हो) परन्तु जिसके प्रेम में रंग गया है। आहाहा! वह विषय न सेवन करे तो भी सेवक कहलाता है। आहाहा! इतना अधिक अन्तर। **विषयसेवन के फल का स्वामित्व होने से सेवन करनेवाला ही है।** आहाहा! वह राग के प्रेम में पड़ा, बाहर में स्त्री का त्याग हो, परिवार का त्याग (हो), दुकान-धन्धे का त्याग (हो), तथापि अन्तर में वह सेवक ही है। आहाहा! विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)